R.N.I. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2021-23

मूल्य-4 रुपये, वर्ष-22, अङ्क-4 अप्रेल 2022

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ०प्र०) का
मासिक मुख समाचार पत्र

मङ्गलायतन

णमिऊण जिणं वीरं
अणंतवरणाणदंसणसहावं।

मङ्गलार्थी प्रवेश पात्रता शिविर की झलकियाँ

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, अलीगढ़ (उ.प्र.) का

मासिक मुखपत्र

वर्ष-22, अङ्क-4 (वी.नि.सं. 2548; वि.सं. 2079) अप्रेल 2022

आज तो बधाई राजा...

आज तो बधाई राजा सिद्धारथ के दरबार में;
सिद्धारथ के दरबार में सिद्धारथ के दरबार में ॥ टेक ॥

त्रिशलादेवी ने ललना जायो, जायो वीरकुमारजी;
कुंडलपुर में उत्सव कीनो, घर-घर मङ्गलाचारजी ॥1 ॥

हाथी दीना घोड़ा दीना, दीना रथ भण्डारजी;
नगर सरीखा पट्टन दीना, दीना सब श्रृंगारजी ॥2 ॥

घन घन घन घन घण्टा बाजे, देव करें जयकारजी;
इन्द्राणी मिल चौक पुरावे, भर-भर मूतियन थालजी ॥3 ॥

तीन लोक में दिनकर प्रगटे, घर-घर मङ्गलचारजी;
केवल कमला रूप निरंजन, वीरेश्वर महाराजजी ॥4 ॥

हाथ जोड़कर मैं करूँ विनती, प्रभुजी को चिरकालजी;
सिद्धारथ राजा दान देवें, बरसे रतन अपारजी ॥5 ॥

संस्थापक सम्पादक
स्व. पण्डित कैलाशचन्द्र जैन, अलीगढ़
स्व. श्री पवन जैन, अलीगढ़

सम्पादक
डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन

सह सम्पादक
पण्डित सुधीर जैन शास्त्री, मङ्गलायतन

सम्पादक मण्डल
ब्रह्मचारी पण्डित ब्रजलाल शाह, वढ़वाण
बाल ब्रह्मचारी हेमन्तभाई गाँधी, सोनगढ़
डॉ. राकेश जैन शास्त्री, नागपुर
श्रीमती बीना जैन, देहरादून

सम्पादकीय सलाहकार
डॉ. हुकमचन्दजी भारिल्ल, जयपुर
पण्डित विमलदादा झाँझरी, उज्जैन
श्री चिरंजीलाल जैन, भावनगर
श्री प्रवीणचन्द्र पी. वोरा, देवलाली
श्री वसन्तभाई एम. दोशी, मुम्बई
श्री श्रेयस् पी. राजा, नैरोबी
श्री विजेन वी. शाह, लन्दन

मार्गदर्शन
डॉ. किरीटभाई गोसलिया, अमेरिका
पण्डित अशोक लुहाड़िया, अलीगढ़

इस अङ्क के प्रकाशन में सहयोग-

श्रीमती सूर्याबहिन

धर्मपत्नी

महेन्द्रशाह 'मन्नूभाई'

13 - एशले रोड, नार्थटन

हीथ, सरे - सी.आर. 7 6

एच.डब्ल्यू. (यू.के.)

क्या - कहाँ

भगवान का अवतार 5
अनुभूति से बाहर दूसरा मार्ग 7
समयसार नाटक.... 9
ज्ञानतत्त्व में पर का अकर्तृत्व 20
श्री महावीर जन्मकल्याणक 22
श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान 24
विद्वान परिचय शृंखला 26
प्रेरक-प्रसंग 28
जिस प्रकार-उसी प्रकार 29
समाचार-दर्शन 30

शुल्क :
वार्षिक : 50.00 रुपये
एक प्रति : 04.00 रुपये

भगवान का अवतार

आज पंच कल्याणक महोत्सव में भगवान का जन्म कल्याणक हुआ। यहाँ पर आत्मा के अनुभव में भगवान का अवतार कैसे हो, अर्थात् सम्यग्दर्शन कैसे प्राप्त हो, इसकी बात है। अंतर में मति, श्रुत को स्वसन्मुख करके जिन्होंने शुद्धात्मा का अनुभव किया, उनकी निर्विकल्प अनुभूति में भगवान का जन्म हुआ, उस सम्यग्दृष्टि की परिणति में भगवान पधारे।

'आत्मा शुद्ध है, अशुद्ध है' ऐसे विकल्प में अटकने से शुद्धात्मा का अनुभव नहीं होता। जो शुद्ध आत्मा वस्तु है, उसको एकरूप से अनुभव में लेना उसका नाम निर्विकल्पता है; और पर्याय में भगवान आत्मा की प्रसिद्धि होती है। गुण-गुणी के भेद के आश्रय से राग की उत्पत्ति होती है। ज्ञानस्वभाव को ज्ञानस्वभावरूप से ही देखने पर, वह व्यक्त और प्रगट होता है, ऐसे आत्मा का अनुभव करना उसका नाम 'शुद्धनय' है। यह शुद्धनय निर्विकल्प है, इस दृष्टि से देखने पर शुद्धवस्तु अनुभव में आती है, वह शुद्धवस्तु सर्व परभावों का नाश करनेवाली है, उसके अनुभव में परभावों का प्रवेश ही नहीं है, शरीर में कर्म में या रागादि परभावों में भगवान आत्मा अवतरित नहीं होता, भगवान आत्मा तो शुद्धनयरूप निर्मल ज्ञान-गृह में अवतरित होता है। ऐसा भगवान का अवतार, मोक्ष का कारण है।

देखो जिनभगवंतों के पंच कल्याणक होते हैं, उन भगवंतों ने प्रथम इसप्रकार शुद्धनय से निजात्मा का अनुभव किया था, पश्चात् आत्मा को पूर्ण रूप से साधकर वे तीर्थंकर हुये। 'इन तीर्थंकरों ने क्या कहा,' यह समझ सम्यग्दर्शन का जन्म कैसे हो, उसकी यह बात है, अपनी आत्मा में अखंड चैतन्य प्रभु को प्रगट अनुभव में लेना वह वास्तविक कल्याण है, ऐसे अपने आत्मा के भान बिना दूसरा सब परभावरूप है, भगवान आत्मा का स्वभाव तो सर्व परभावों का नाश करनेवाला है, ऐसे आत्मा का जिसने अनुभव किया उसी ने भगवान को पहिचाना। अरे चैतन्य के अमूल्य रत्नों से भरपूर यह भगवान, उसको अज्ञानीजन तुच्छ परभाव के जितना मान लेते हैं, भाई, क्षण में केवलज्ञान की कला प्रगट करे

ऐसी शक्ति चैतन्य स्वभाव में सदा विद्यमान है, ऐसी विद्यमान वस्तु का अनुभव करना चाहिये, इस वस्तु में आठ कर्म नहीं हैं; तीर्थंकर प्रकृति के रजकण भले ही बंधे हों, किंतु उनका चैतन्य में अभाव है; और रागादि परभावों का भी इसमें अभाव है, ऐसे आत्मा को जब जाना तब धर्मात्मा के मन में समस्त परभावों की महिमा नष्ट हो गयी, वह जानता है कि उसकी चैतन्य वस्तु विकार का नाशक है; अर्थात् विकार को नष्ट करे ऐसा उसका स्वभाव है, विकार को उत्पन्न करे ऐसी उसकी चैतन्यवस्तु नहीं है, क्षण-क्षण में अपनी निर्मल पर्याय उत्पन्न करना चैतन्य वस्तु का स्वभाव है, भगवान वीरनाथ का चैत्र शुक्ल तेरस को जन्म हुआ, वास्तव में तो भगवान वीरनाथ क्षण-क्षण में अपनी निर्मल परिणति में ही उत्पन्न होते थे। वही वास्तव में उनका जन्म था, देह में भगवान उत्पन्न हुये या त्रिशलादेवी माता के उदर में भगवान का जन्म हुआ, ऐसा कहना यह व्यवहार है, अहा-तीर्थंकर का जहाँ अवतार होता है, वहाँ अंधकार नहीं रहता, जगत में प्रकाश फैल जाता है तो जिसके अंतर में स्वानुभूतिरूप सूर्य के प्रकाश से जगमगाता चैतन्य भगवान का अवतार हुआ। उसके अंतर में अज्ञान का अंधकार कैसे रह सकता है ? वहाँ परभाव भी कैसे रह सकते हैं ? वहाँ तो ज्ञान प्रकाश से आत्मा चमक उठा, अहो आत्मा में परम अमृत की वर्षा हो ऐसी यह बात है, विकार उसकी पर्याय में रहे ऐसा आत्मा का शुद्ध स्वभाव नहीं है, किंतु विकार का नाश करने का आत्मा का स्वभाव है, तथा निर्मल ज्ञान-आनंदरूप परिणति प्रगट करके, उसमें रहने का आत्मा का स्वभाव है, उसको जाने तो स्वानुभव में आनंदमय आत्म-प्रभु का अवतार हो, और संसार के दु:खरूप अवतार मिटें। ●●

साभार : आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष -22, अंक-12

संत शुद्धात्मा के अनुभव का उपदेश देते हैं, क्योंकि उससे ही मोक्षमार्ग होता है।

जीवन में अभी ही ऐसा अनुभव करने जैसा है; अनुभव जीवन ही सच्चा जीवन है।

हे जीव ! अतीन्द्रिय आनंद का स्वाद स्वानुभव में है, दूसरे कहीं भी वह आनंद नहीं।

अनुभूति से बाहर दूसरा मार्ग

नहीं... नहीं... नहीं

[समयसार कलश टीका-प्रवचन]

शुद्धात्मा की स्वानुभूतिरूप जो मोक्षमार्ग है, उसमें सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीनों समा जाते हैं। इनके द्वारा ही साध्यरूप शुद्ध आत्मा की सिद्धि होती है, इसके सिवाय दूसरे कोई भी उपाय से साध्य की सिद्धि नहीं होती। संत ऐसे मार्ग द्वारा आत्मा को सिद्ध करते-करते जगत् को नि:शंकरूप से उसकी रीति बतलाते हैं कि आत्मा को सिद्ध करने का यही मार्ग है, दूसरा मार्ग नहीं... नहीं।

कथमपि समुपात्त त्रित्वमप्येकताया,
अपतितमिदमात्म ज्योतिरुद्गच्छदच्छम्।
सततमनुभवामोऽनंत चैतन्य चिह्नं,
न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्यसिद्धिः ॥२०॥

व्यवहार से सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र ऐसा तीनपना स्वीकार किया होने पर भी आत्मज्योति ने स्वयं की एकता नहीं छोड़ी; अनंत चैतन्य चिह्नवाली इस आत्मज्योति को आचार्यदेव अनुभव करते हैं। स्वयं नि:शंक कहते हैं कि हम ऐसी आत्मज्योति को सतत् अनुभव करते हैं, क्योंकि इसके अनुभव से ही साध्य की सिद्धि है। अनुभूति से बाहर दूसरे किसी मार्ग से साध्य की सिद्धि निश्चित नहीं... नहीं।

शुद्धात्मा का अनुभव वही मोक्षमार्ग है। उसके द्वारा ही साध्य की सिद्धि है, इसके सिवाय दूसरे किसी प्रकार से साध्य की सिद्धि नहीं होती-इसप्रकार मोक्षमार्ग का नियम बताया।

फिर कहते हैं कि 'हम निरंतर ऐसे चैतन्यप्रकाश को अनुभव करते हैं;' अर्थात् स्वयं का उदाहरण देकर दूसरे मुमुक्षुओं को भी उसकी प्रेरणा दी कि हे मुमुक्षुओं! तुम भी ऐसे स्वभाव का ही अनुभव करो। हम ऐसे अनुभव से मोक्षमार्ग को सिद्ध कर रहे हैं और तुम भी ऐसा ही अनुभव करो;—इसके सिवाय किसी अन्य प्रकार से साध्य की सिद्धि नहीं... ही नहीं।

देखो, यह मोक्षमार्ग सिद्ध करने की स्पष्ट रीति; एक ही रीति है, दूसरी कोई रीति नहीं। कैसी रीति ? कि शुद्ध चैतन्य ज्योतिरूप आत्मा का अनुभव करना यही मोक्ष को सिद्ध करने की रीति है। इसके अनुभव सिवाय दूसरे किसी उपाय द्वारा (राग द्वारा, व्यवहार द्वारा) मोक्षमार्ग सिद्ध नहीं होता।

शुद्ध चैतन्यप्रकाशी आत्मा है, वह राग के साथ तन्मय नहीं, अर्थात् उसका अनुभव राग से भिन्न है। आत्मा की जो अनुभूति मोक्ष की साधक है, वह तो निर्मल चैतन्यभावरूप से ही परिणमन करती है, वह रागरूप से परिणमन नहीं करती, उसका परिणमन चैतन्य तेज से भरा हुआ है। उस परिणमन में कुछ मलिनता नहीं आ जाती;—ऐसी दशा का नाम 'मोक्षमार्ग' है।

अनुभव में आती चैतन्य ज्योति अनंत चैतन्य चिह्नरूप है; स्वानुभूतिरूप ज्ञान भी अति-बहुत सामर्थ्यवाला है, अखण्ड चैतन्य स्वभाव को स्वानुभव में ले लेने की महान शक्ति इसमें ही है। इसके सिवाय राग में अथवा इन्द्रियज्ञान में ऐसी शक्ति नहीं।—इसलिये ऐसे ज्ञान द्वारा स्वानुभव से शुद्धात्मा का प्रत्यक्ष आस्वाद लेना-यह साध्य की सिद्धि का उपाय है।

आशंका—आपने तो स्वानुभव पर ही विशेष जोर देकर, उसका ही दृढ़रूप से बारंबार उपदेश दिया। पुनः पुनः इसकी ही महिमा कही (की), उसका क्या कारण है ?

उत्तर—भाई, इस स्वानुभव से ही साध्य की सिद्धि होती है—'न खलु न खलु यस्मादन्यथा साध्य सिद्धिः'—इसके सिवाय दूसरे किसी उपाय से साध्यसिद्धि नहीं होती। इसलिये स्वानुभव ही मुख्य वस्तु है। जैसा शुद्धस्वरूप है वैसा ही उसका शुद्ध अनुभव करने से वह शुद्धरूप से प्रगट होता है। आत्मा के मोक्ष की सिद्धि का यही उपाय है, दूसरा उपाय नहीं-यह निश्चित है। इसलिये मोक्षार्थी जीव निरन्तर ऐसे अनुभव का ही उद्यम करें।

एक शुद्ध अनुभव और दूसरा राग—ये दोनों कर्म के नाश का कारण हों—ऐसी मान्यता अज्ञानी की है। यहाँ स्पष्ट कहते हैं कि एक शुद्धात्म अनुभव सिवाय दूसरा कोई कर्म के नाश का कारण नहीं-नहीं-नही। ●●

साभार : आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष -22, अंक-12

श्री समयसार नाटक पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के धारावाही प्रवचन

ज्ञाता की अवस्था

मृग दौड़-दौड़कर मरे, तो भी उन्हें चमक में कहीं जल नहीं मिलता। उसीप्रकार पुण्य-पाप भाव और उसके फल, रेत की चमक में दिखनेवाले पानी की तरह हैं; उसमें कहीं ज्ञानानन्द का जल नहीं मिलता। मूर्ख अज्ञानी प्राणी व्यर्थ ही उनमें धर्म मानकर दौड़ता है।

इस मन मृग को वापिस मोड़ना रे लाल,
जोड़ दो आत्मसरोवर से आज;
इसे मिलेगा आत्मसुख अनमोल रे लाल।

पर में और पुण्य में सुख की कल्पना करनेवाले मन को वहाँ से वापिस मोड़कर आत्मसरोवर में जोड़ दो तो अमूल्य ऐसा आत्मसुख अवश्य मिलेगा।

धर्मी को प्रशस्तराग नहीं आता ऐसा नहीं है। राग तो आता है; परन्तु उससे मुझे धर्म अथवा सुख होगा ऐसा भ्रम धर्मी को नहीं होता। अशुभ से बचने के लिए शुभ का ऐसा काल हो तो शुभराग आता है; परन्तु वह कषाय की अग्नि है, धर्म नहीं।

जगत को यह सत्य सुनना दुर्लभ हो गया है। जूनागढ़ की यात्रा या शिखरजी की यात्रा करो, पर है वह शुभभाव।

मुमुक्षु:- आपने भी हमें यात्रा तो कराई हैं?

पूज्य गुरुदेवश्री:- यही कहा है कि शुभभाव तो होता है; परन्तु वह दु:खरूप है-हेय है; तो भी आये बिना रहता भी नहीं है। जहाँ तक वीतराग न हो, वहाँ तक अशुभ से बचने के लिये ऐसी शुभ की स्थिति होती है; परन्तु वह हेय है।

अन्दर से ऐसे माप निकालना अनन्तकाल में भी दुर्लभ है। स्वयं आनन्द का सरोवर ही है; परन्तु उसकी दृष्टि नहीं करता और विकल्परूपी चमक में सुख का पानी लेने के लिए दौड़ा है। भाई! वहाँ शान्ति और सुख नहीं मिलेगा।

जो 'यह शुभराग मेरा है, मैं अशुभ से बचा हूँ' ऐसा मानता है, उसको मिथ्यात्व तो पड़ा ही है। यही महापाप है। इस पाप से तो बचा नहीं है। शुभराग से

लाभ होता है ऐसा माना है यही महामिथ्यात्व का पाप है; इसकी तो अज्ञानी को खबर ही नहीं है। भाई! वीतराग की बातें कठिन हैं। वीतराग कहते हैं कि मेरी बात सुनने बैठा है, परन्तु यह विकल्प है ऐसा ध्यान रखना; विकल्प में फँस मत जाना।

बापू! तू प्रकाश का पिण्ड है। तेरे में शुभाशुभ का कण भी नहीं शोभता है। धर्मी-विचक्षण-समकिती ऐसा जानता है कि मैं तो जाननस्वभाव का समुद्र हूँ। उसमें से जानना..जानना..जानना..निकला ही करता है, कम नहीं होता। मेरे स्वभाव में से राग और पुण्य नहीं निकलता।

जो विशाल पंचकल्याणक करे, करोड़ों रुपये खर्च करे, गजरथ निकाले और यह सब मैंने किया ऐसा मानता है, वह तो जड़ का स्वामी हुआ। उसको मिथ्यात्व का महापाप लगता है; क्योंकि वह सब तो जड़ की और राग की क्रिया है, जीव का स्वरूप नहीं हैं। धर्मी जीव की दृष्टि तो ज्ञानानन्द समुद्र (आत्मा) पर ही होती है। धर्मात्मा जीव जानता है कि शुद्ध चेतनासिन्धु ज्ञान का समुद्र ही मेरा रूप है, राग मेरा रूप नहीं है।

अब 31 वें कलश पर रचा गया 34 वाँ पद्य लेते हैं, जिसमें बनारसीदासजी ने यह वर्णन किया है कि तत्त्वज्ञान होने पर जीव की दशा कैसी होती है।

तत्त्वज्ञान होने पर जीव की अवस्था का वर्णन

तत्त्वकी प्रतीतिसौं लख्यौ है निजपरगुन,
दृग ज्ञान चरन त्रिविधि परिनयौ है।
विसद विवेक आयौ आछौ विसराम पायौ।
आपुहीमैं आपनौ सहारौ सोधि लयौ है।।
कहत बनारसी गहत पुरुषारथकौं,
सहज सुभावसौं विभाव मिटि गयो है।
पत्राके पकायें जैसैं कंचन विमल होत,
तैसैं सुद्ध चेतन प्रकास रूप भयो है।।34।।

अर्थः- तत्त्वश्रद्धान होने से निज-पर गुण की पहिचान हुई जिससे अपने निज गुण सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र में परिणमन किया है, निर्मल भेदविज्ञान होने से उत्तम विश्राम मिला और अपने स्वरूप में ही अपना सहायक खोज लिया। पण्डित बनारसीदासजी कहते हैं कि इस प्रयत्न से स्वयं ही विभाव परिणमन नष्ट

हो गया और शुद्ध आत्मा ऐसा प्रकाशवान हुआ जैसे रसायन में स्वर्ण के पत्र पकाने से वह उज्ज्वल हो जाता है। ।34।।

काव्य – 34 पर प्रवचन

तत्त्वज्ञान अर्थात् 'मैं तो त्रिकाल ज्ञान और आनन्दस्वरूप हूँ, पुण्य-पाप के विकल्प और उनके फल में कहीं मैं नहीं हूँ।' आत्मा जैसा पूर्ण है, वैसा ज्ञान में लेकर प्रतीति की, वह सच्ची प्रतीति है। वह प्रतीति होने पर स्व और पर की सच्ची पहिचान होती है। 'शुद्ध आनन्दकंद वह मैं और पुण्य-पाप के विकल्प, वे पर विभाव हैं, मेरे नहीं'- इसप्रकार उनसे भिन्नता का भान होता है। इसलिए ऐसे भेदज्ञानी जीव को सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र में परिणमन होता है और निर्मल भेदविज्ञान होने से उसको स्वरूप में ही विश्राम मिल गया और उसने स्वरूप में ही अपना सहायक खोज लिया है।

सम्यग्दर्शन होने पर स्वानुभव में ज्ञान और स्थिरता का अंश साथ ही होता है। वस्तु के परिपूर्ण तत्त्व की श्रद्धा में समस्त अंश साथ ही होते हैं। समकिती को अनन्तानुबंधी कषाय के अभाव में स्वरूपाचरण चारित्र भी होता है।

धर्मी को **'दृग ज्ञान चरण त्रिविधि परिनयौ है'** -दृग अर्थात् श्रद्धा, ज्ञान अर्थात् स्व का ज्ञान और चरण अर्थात् स्वरूप में रमणता ये तीनों गुण एक साथ परिणमित हुए हैं।

बहुत लोगों के बीच ऐसी बात की हो तो शुष्क लगती है, उन्हें लगता है कि व्यवहार को उड़ाते हैं; परन्तु उनको सच्चे निश्चय और व्यवहार के स्वरूप का पता ही कहाँ है?लोग तो यात्रा करने जायें, वहाँ सवेरे जल्दी उठकर, पहाड़ पर चढ़कर, दर्शन करके नीचे उतरने से बहुत थकान हो जाने से गर्म पानी से नहाने आदि की व्यवस्था में पड़ जाते हैं। क्या यही यात्रा करना कहलाती है?धर्मी को भी शुभरागरूप व्यवहार आता है; परन्तु वह जानता है कि स्वरूप में से च्युत होकर यह भाव आया है। यह मेरा निज भाव नहीं, उदय भाव है, संसार है।

'विसद विवेक आयौ' -शुभाशुभ राग में रहता था, उसमें से हटकर स्वरूप की दृष्टि होने पर धर्मी को अन्तर में निर्मल आत्मा में विश्राम मिला है। अनादि से पुण्य-पाप के विभाव भावों में विश्राम नहीं था। अब विशद विवेक जागृत होने पर विश्राम-धाम मिला है। उसमें ऐसा विश्राम मिला कि अनादि की थकान उतर गई है।

अज्ञानी जीव पैसा कमाकर फिर शान्ति से रहूँगा और जिन्दगी की थकान उतारूँगा ऐसी आशा रखते हैं, वह खोटी है। पैसा खर्च करने से धर्म नहीं होता और स्वभाव की दृष्टि बिना थकान नहीं उतरती- यह समझ लेना। जब तक मिथ्या-विपरीत दृष्टि का अभाव नहीं होगा, वहाँ तक निगोद मिलेगा; मोक्ष नहीं मिलेगा।

हाँ, यात्रा, पूजा, भक्ति के भाव नहीं होते ऐसा नहीं है; शुभभाव तो होता है; परन्तु जो उससे धर्म मानेगा उसको महामिथ्यात्व का पाप साथ ही लगता ही है।

जीवों को पैसा कमाने में बहुत रस है। पाँच मिलते हों तो पचास और पचास मिलते हों तो सौ प्राप्त करने का प्रयत्न करते हैं; परन्तु भाई!

'हुनर करे हजार, भाग्य बिन मिले न कौड़ी'

अर्थात् पैसे की प्राप्ति में पुरुषार्थ बिलकुल काम नहीं आता। पूर्व के पुण्य के रजकण जलते हैं तब वर्तमान में धनादिक प्राप्त होते हैं। अत: यह तो पूर्व पुण्य के अनुसार मिलते हैं। पुरुषार्थ तो एक अपने आत्मा के कार्य में काम आता है। इसमें पुरुषार्थ कर न..।

भाई! यह तो वीतराग का मार्ग है। इसमें किसी की चतुराई नहीं चलती। एक व्यक्ति ने प्रश्न किया था कि महाराज! इस धर्म में पैसेवालों का कोई नम्बर है या नहीं? कहा, बिलकुल नहीं। मैं पैसेवाला हूँ यह मान्यता ही अज्ञानी का भ्रम है। क्या आत्मा जड़-पैसेवाला हो सकता है?

कोई कहे कि गुरु तो हाथ पकड़कर ले जायेंगे न? यह बात भी मिथ्या है। (कहावत है कि) ब्राह्मण शादी करा दे, पर कोई घर चला दे? उसीप्रकार गुरु तो मार्ग समझाते हैं; परन्तु समझना तो स्वयं का काम है न! जो समझता है, वह मार्ग पर चलकर तिर सकता है।

भाई! तूने अनन्त काल इसीप्रकार मिथ्यात्व के दु:ख में व्यतीत किया है। अरे! इस आँधी में तिनका कहाँ जाकर पड़ेगा -यह निश्चित नहीं है। उसीप्रकार तेरे अवतार कहाँ होंगे यह तू नहीं जानता! पुण्य-पाप के भाव को अपना मानकर पड़ा है तो नरक निगोद में चला जायेगा। भाई! तुझे भवभ्रमण का दु:ख नहीं लगता? तूने ऐसे दु:ख भोगे हैं कि तूने भोगे और भगवान जानते हैं। वाणी से नहीं कहे जा सकें- इतने दु:ख तूने भोगे हैं; परन्तु तू उनको भूल गया है और यहाँ जरासी

अनुकूलता मिली, उसमें तू "मैं चौड़ा और बाजार सकरा" हो गया है; परन्तु भाई! चैतन्यसूर्य की परीक्षा में पास हुए बिना तू ना पास (फेल) ही है यह समझ लेना।

जीव अपने स्वभाव को भूलकर पुण्य-पाप की श्रद्धा, उनका ज्ञान और उनमें स्थिरता करता है, वह संसार भ्रमण का कारण है। उससे भिन्न होकर प्रथम तो सत्य तत्त्व का श्रवण करे, उसे लक्ष्य में ले और फिर अन्दर में गहरा उतरे तो उसको श्रद्धा होती है कि-अहो! मैं तो राग से भिन्न चैतन्यतत्व हूँ। ऐसे चैतन्य की श्रद्धा-ज्ञान और स्थिरता का परिणमन हो, सुख का वेदन आवे तब वह जीव धर्मी और सुख के पंथ में चढ़ा हुआ जीव कहलाता है। उसको ऐसा निर्मल विवेक प्रगट हो गया है कि अपना विश्राम स्वयं ही प्राप्त कर लिया और अपना सहायक अपने में ही खोज लिया है। उसको अब किसी विकल्प अथवा निमित्त के सहारे की अपेक्षा नहीं है।

पण्डित बनारसीदासजी ने शास्त्र का सार निकालकर रख दिया है। बनारसीदासजी गृहस्थ तो थे, पर साथ ही श्रृंगारी और लंपटी भी थे; परन्तु बाद में धर्मी हो गये थे। तत्पश्चात् इन काव्यों की रचना की है। अहो! **'आपुहि में आपनौ सहारौ सौधि लयौ है'** -अभी तो जिसको समझ का ही ठिकाना नहीं हो; धारणा भी यथार्थ नहीं हुई हो वह अपना सहारा अपने में नहीं खोज सकता । धर्मी ने तो अपना सहारा अपने में खोज लिया है। उसने विभाव की ओर का पुरुषार्थ छोड़कर स्वभाव की ओर का पुरुषार्थ किया, वहाँ विभाव तो सब सहज ही भिन्न पड़ गये। जैसे अनाज में से कंकर निकाल देते हैं; उसीप्रकार धर्मी विभावरूपी कंकरों को अपने चैतन्य में से निकाल देता है। ऐसा भेदज्ञान, वह धर्म की पहली शुरुआत-पहली सीढ़ी है। इसके बिना व्रत, तप आदि सब बिना एक के शून्य समान हैं।

देखो, यहाँ कहते हैं कि अनादि का अन-अभ्यास है इसलिए यह समझना थोड़ा कठिन लगता है; परन्तु समझने योग्य बात यही है। सर्वज्ञ वीतराग तीर्थंकरदेव ने आत्मा को जैसा देखा है- ऐसे आत्मा की प्रतीति कैसी होती है वह यहाँ कहते हैं।

'तत्त्व की प्रतीतिसौं लख्यो है निजपरगुन।' तत्त्व की प्रतीति होने पर स्व और पर के गुण की पहिचान हो जाती है कि मैं तो ज्ञानानन्दस्वरूप वस्तु हूँ और पुण्य-पाप के भाव राग है वह विकार है; मेरा स्वरूप नहीं। जड़ तो आत्मा से

अत्यन्त भिन्न परवस्तु है। उसे निज मानना तो महामिथ्यात्व की विपरीत मान्यता है ही; परन्तु धनादि लक्ष्मी का राग और लक्ष्मी को दान में देने का राग भी आत्मा को दु:खरूप है।

श्रोता:- तो फिर लक्ष्मी को समुद्र में फेंक देना या संग्रह करना ?

पूज्य गुरुदेवश्री:- लक्ष्मी के ऊपर तेरा अधिकार ही नहीं है। लक्ष्मी तो जड़ है। जड़वस्तु को निज मानना और उसकी क्रिया मैं कर सकता हूँ ऐसा मानना ही महाभ्रम है। तूने भगवान सर्वज्ञदेव का कहा हुआ वस्तुस्वरूप सुना ही नहीं है। प्रभु! मनुष्य देह तो मिला, परन्तु इसे व्यर्थ गंवा दिया है।

तत्त्व की प्रतीति होने पर ज्ञानी निज और पर के गुणों को भिन्न जानता है। शरीर, वाणी, मन, लक्ष्मी आदि तो भिन्न है ही; परन्तु शुभ-अशुभ भाव भी पर हैं ऐसा ज्ञानी जानता है। भेदज्ञानी जानता है कि आस्रवतत्त्व और जीवतत्त्व भिन्न है।

'दृग ज्ञान चरण त्रिविध परिनयौ है' मैं शुद्ध ज्ञानानन्द हूँ ऐसी श्रद्धा, ज्ञान और उसमें परिणमनरूप चारित्र -इन तीनों दशारूप आत्मा परिणमता है। आत्मा कभी शरीर, मकान और धनादिरूप नहीं परिणमता है। विकल्प उठता है, वह भी वास्तव में परतत्त्व है। आत्मा तो शुद्धज्ञान और आनन्द की मूर्ति है। अशुभराग तो आत्मा से भिन्न है ही; परन्तु शुभराग भी विकल्प है; राग है, वासना है; आत्मा का स्वरूप नहीं है। इसलिए मेरे से राग भिन्न है। राग मेरा है ऐसी मान्यता दु:खरूप है। जैसे जिस बर्तन में कस्तूरी रखी हो और पश्चात् उस कस्तूरी को निकाल लेने पर भी बर्तन में गंध आती है; उसीप्रकार राग मेरा है यह मान्यता दुर्गन्ध रूप है। मेरे में राग है ही नहीं।

प्रभु! तेरी चीज में विकल्प उठे, वह भी दु:खरूप है। अशुभराग तो दु:खरूप है ही; परन्तु आत्मा का भान होने पर समकिती को शुभराग भी दु:खरूप लगता है, परतत्त्व लगता है। मेरा तत्त्व तो शुद्धज्ञान और आनन्दरूप है ऐसे भान बिना समस्त ज्ञान व्यर्थ है।

'विसद विवेक आयौ आछौ विश्राम पायौ।' जहाँ तक शुभाशुभभावों में मिठास थी, वहाँ तक दु:ख था, भ्रम था, अविवेक था। अब जहाँ उस जीव ने निर्मल भेद-विज्ञान प्रकट किया, वहाँ उसको अपने आनन्दधाम में विश्राम मिला। अनादिकालीन दु:ख से मुक्त हुआ, भ्रम दूर हुआ।

वीतरागी सनातन जैनधर्म में धर्म की प्रभावना के हेतु से दानादि करे, वह पुण्य का कारण है; अन्यथा अन्यमत में दानादि करे, वह तो उल्टा मिथ्यात्व का पोषक है।

'आपुहि मैं आपनौं सहारौ सोधि लियौ है।' –अन्दर में आत्मा चैतन्य के नूर के पूर से भरा है। उसे शोधकर ज्ञानी ने अपने में सहारा प्राप्त कर लिया है। अपने में अपना सहारा ले लेना वह धर्म और शान्ति है। इसके अतिरिक्त शुभाशुभ भाव, प्रतिक्रमण, सामायिक और प्रौषध कर लेने से धर्म नहीं हो जाता।

परमात्मा कहते हैं कि तू अमृत का सागर है। परमात्मा कहें या संत कहें या ज्ञानी कहें, सब एक ही है। आत्मा परमात्मस्वरूप ही है, इसका जिसको पता नहीं है, वही बाहर में समृद्धि और सहारा खोजने जाता है। वस्तुतः अपना सहारा स्वयं ही है, बाहर में कोई अपना सहारा नहीं है।

'कहत बनारसी गहत पुरुषार्थ कौ, सहज सुभाव सौ विभाव मिटि गयौ है।' – निजस्वभाव की सन्मुखता का पुरुषार्थ ग्रहण करने से विभाव तो सहज ही नष्ट हो गया है।

ऐसा मार्ग इसको कैसे समझ में आवे ? पाँच-पच्चीस हजार रुपये दान में खर्च किये हों तो ऐसा होता है कि इतना तो मुझको धर्म होगा न ? धूल भी धर्म नहीं होगा भाई ! तुझे पता नहीं है। बेभान होकर तू संसार में परिभ्रमण कर रहा है और दुःखी हो रहा है। अब इस दुःख से छूटकर स्वभाव का पुरुषार्थ कर तो विभाव अपने आप मिट जायेगा।

'पन्ना के पकाये जैसे कंचन विमल होत, तैसें सुद्ध चेतन प्रकास रूप भयौं है।' –जैसे सोने के पतले पन्नों को अग्नि में पकाने से सोना एकदम शुद्ध हो जाता है; उसीप्रकार राग से भिन्न पड़ने के लिए ध्यानाग्नि से आत्मा को पकाने से राग एकदम भिन्न पड़ जाता है और आत्मा अत्यन्त शुद्ध हो जाता है। यह वीतराग का मार्ग है। राग से धर्म मनावे, वह वीतराग का मार्ग नहीं, बापू ! वह तो अजैन है।

अब 32 वें श्लोक पर रचा गया 35 वाँ पद्य है। इसमें बनारसीदासजी नटी का दृष्टान्त देकर वस्तुस्वरूप की प्राप्ति का कथन करते हैं।

वस्तुस्वभाव की प्राप्ति में नटी का दृष्टान्त

जैसैं कोऊ पातुर बनाय वस्त्र आभरन,
आवति अखारे निसि आड़ौ पट करिकैं।

दुहूँ ओर दीवटि संवारि पट दूरि कीजै,
सकल सभाके लोग देखैं दृष्टि धरिकैं।।
तैसैं ग्यान सागर मिथ्याति ग्रंथि भेदि करि,
उमग्यौ प्रगट रह्यौ तिहूं लोक भरिकैं।
ऐसौ उपदेस सुनि चाहिए जगत जीव,
सुद्धता संभारै जग जालसौं निसरिकैं।।35।।

अर्थः– जिस प्रकार नटी रात्रि में वस्त्राभूषणों से सजकर नाट्यशाला में परदे की ओट में आ खड़ी होती है तो किसी को दिखाई नहीं देती, परन्तु जब दोनों ओर के शमादान ठीक करके पर्दा हटाया जाता है तो सभा की सब मंडली को साफ दिखाई देती है, उसी प्रकार ज्ञान का समुद्र आत्मा जो मिथ्यात्व के परदे में ढँक रहा था सो प्रगट हुआ जो त्रैलोक्य का ज्ञायक होवेगा। श्रीगुरु कहते हैं कि हे जगवासी जीवो! ऐसा उपदेश सुनकर तुम्हें जगज्जाल से निकलकर अपनी शुद्धता सम्हालना चाहिये।।35।।

काव्य – 35 पर प्रवचन

देखो, इस शास्त्र में कितनी बार सिन्धु शब्द आता है। भगवान आत्मा ज्ञान का सिन्धु है। जो उसको रागवाला और पामर मानता है, वह भ्रम से भ्रमता है। (मूल श्लोक में सिन्धुः शब्द आता है।)

जैसे नटी रात्रि में वस्त्राभूषण से सुसज्जित होकर नाट्यशाला में परदे के पीछे आकर खड़ी रहती है, तब तो किसी को दिखायी नहीं देती है; परन्तु जब दोनों तरफ के दीपक जलाकर परदा हटा लिया जाता है तो सभासदों को स्पष्ट दिखती है। उसीप्रकार ज्ञान का समुद्र आत्मा जो मिथ्यात्व के परदे में ढक रहा था, शुभराग की एकता के परदे में आत्मा दिखता नहीं था वह जहाँ अन्तर्मुखदृष्टि द्वारा ज्ञान में प्रकाशित हुआ तो यह तो तीनलोक का ज्ञायक है ऐसा ज्ञात होता है।

शुभ और अशुभराग में एकत्वबुद्धि वह मिथ्यात्व की ग्रंथी है। अब इस ज्ञान को राग से भिन्न करना यह धर्म की क्रिया है। चैतन्य सागर में अनन्त अपरिमित ज्ञान और आनन्द भरा है–ऐसे आत्मा के सन्मुख दृष्टि करने से राग की एकता की गांठ गल जाती है–मिथ्यात्व का नाश हो जाता है। अनादि से राग और एकसमय की अवस्था में ही 'मैं पना' मान लिया था, इससे सम्पूर्ण अनन्त शक्तिस्वरूप

वस्तु ढक रही थी। मैं तो रागी हूँ, द्वेषी हूँ, अल्पज्ञ हूँ, पामर हूँ ऐसी दृष्टि होने से चैतन्य महासत्ता इसके ज्ञान में ढक गयी थी। धर्म के नाम से भी शुभराग में धर्म बुद्धि होती थी। इससे वस्तु की वास्तविक समृद्धि तो ढक रही थी, खबर ही नहीं थी। इसलिए–

'मुनिव्रतधार अनन्तबार ग्रीवक उपजायो।
पै निज आतमज्ञान बिना सुख लेश न पायो।।'

अनन्त बार नग्न होकर पंचमहाव्रतादि, अट्ठाईस मूलगुण पालन किये; परन्तु धर्म नहीं हुआ। राग से भिन्न नहीं पड़ा और स्वभाव सन्मुख दृष्टि नहीं की, इसलिए धर्म नहीं हुआ। स्वभाव की एकता करने से राग की एकता टूट जाती है; परन्तु यह काम इसने कभी नहीं किया।

महँगा लगे, चाहे सस्ता लगे; परन्तु धर्म की रीति तो यही है। भाई! हलुआ बनाना होवे तो आटे को घी में सेकने के बाद ही शक्कर का पानी उसमें डालें तो हलुआ बनता है; परन्तु यदि यह विधि महँगी लगे और सस्ता करने के लिये पहले पानी में आटा डालकर फिर घी डाले तो हलुआ नहीं बनेगा और घी, आटा व शक्कर तीनों व्यर्थ जायेंगे। उसीप्रकार राग से भिन्न आत्मा की श्रद्धा करने में अनन्त पुरुषार्थ है। उससे धर्म होता है। यह महँगा (कठिन) लगता है तो क्रियायें करके धर्म प्रकट करना चाहेगा तो धर्म तो होगा ही नहीं; उलटे चार गतियों में परिभ्रमण करना पड़ेगा।

दुनिया में तो सब स्वार्थ के पुतले हैं। मरण के समय पिता पाँच लाख रुपये दान में देने को कहने लगे तो पुत्र कहेगा पिताजी! अभी पैसे को याद नहीं करते; धर्म सँभालो। महाराज भी कहते थे कि पैसे से धर्म नहीं होता। पिता श्वास निकल रही हो तो बोल नहीं सकता; परन्तु मन में तो समझता है कि यह लड़का स्वार्थवश महाराज के उपदेश का भी विपरीत अर्थ करता है। पूर्वकृत पुण्य के जलने से यह करोड़ो रुपयों की सम्पदा प्राप्त हुई है तो मेरे हिस्से की सम्पदा तो दान में दूँ? ऐसा उसका भाव होवे तो भाव का पुण्य उसको बँधता ही है; परन्तु उससे धर्म नहीं होता, जन्म-मरण का अभाव नहीं होता। सभी पैसेवालों की प्रायः ऐसी ही दशा होती है। अतः पहले से ही ममता घटाना।

'उमग्यो प्रकट रह्यो तिहूँ लोक भरिके।' – अहा! जिसको सम्यग्ज्ञान हुआ,

वह तीनलोक का ज्ञाता हो गया, किसी का कर्त्ता-भोक्ता नहीं रहा। भगवान! ऐसी तेरी सत्ता है। पुण्य-पाप के विकल्प -यह तेरी सत्ता नहीं, तेरी सत्ता में नहीं, तेरी चीज नहीं। अर्द्धलोक के स्वामी ऐसे इन्द्रों की सभा में भगवान द्वारा कही हुई यह बात है। आचार्य कुन्दकुन्द भी यह वाणी सुनने के लिए वहाँ भगवान के पास गये थे और अपने लिए यह माल लाये हैं। कुन्दकुन्दाचार्य तो गाथा लिख गये हैं, परन्तु इसके बाद अमृतचन्दाचार्य ने टीका लिखी। पण्डित राजमल जी ने उसका भी विशेष अर्थ किया और बनारसीदासजी ने पद्य में उसका विस्तार किया है। अहो! संत कितना माल देकर गये हैं।

आत्मा 'उमग्यौ' अर्थात् अन्तर्मुख दृष्टि द्वारा आत्मा चैतन्य स्वभाव से उछलता है। ज्ञाता-दृष्टा होकर स्व-पर का जाननेवाला हो जाता है। राग होने पर भी उसका कर्त्ता नहीं होता, जाननेवाला रहता है। ऐसा धर्मात्मा राज्य में होने पर भी स्त्री, लश्कर, सम्पत्ति और उनके प्रति होनेवाले राग का जाननेवाला रहता है, किसी का कर्त्ता अथवा किसी को अपना माननेवाला नहीं बनता है। अहो! अनादि से जो ज्ञान मिथ्यात्व के परदे में ढक गया था वह अब सम्यक्त्व होने पर ज्ञान का समुद्र खुल्ला हो गया। फिर तो वह आत्मा तीनकाल-तीनलोक का ज्ञायक हो जायेगा। ज्ञानसमुद्र सम्पूर्ण रूप से उछल जायेगा।

अनादि से ज्ञानसमुद्र आत्मा राग में ढक गया था, वह सम्यग्दर्शन प्राप्त होने पर राग से भिन्न पड़कर अपरिमित ज्ञान और अपरिमित आनन्द खुल्ला (प्रकट) हो गया। अब वह किसी पर को अपना नहीं मानता, किसी का कर्त्ता नहीं होता- ऐसी दशा का नाम सम्यक्दशा है। यह चौथे गुणस्थान की दशा है। आगे बढ़कर तेरहवें गुणस्थान में केवलज्ञान प्रकट होता है, तब आत्मा तीनकाल तीनलोक को जानने लगता है। सर्वप्रथम ऐसी (सम्यक्त्वरूप) दशा के बिना चारित्र और केवलज्ञान प्रकट नहीं होता है। स्व-पर का भेदविज्ञान करके स्व में स्थिर होने पर केवलज्ञान प्रकट होता है।

'ऐसौ उपदेश सुनि चाहिए जगतजीव, सुद्धता संभारै जग जाल सौं निसरिकै।' -हे जगत के जीवों! ऐसा उपदेश सुनकर तुम्हें जगत के जाल में से निकलकर अपनी शुद्धता की संभाल करना चाहिए। अनादिकाल से स्वयं को स्वयं की शुद्धता का विस्मरण था और अशुद्धता का स्मरण था। मैं दया पालूँ, व्रत

पालूँ, क्रिया करूँ –यह मेरा स्वरूप है ऐसा मानता था। जो शरीर प्राप्त हो उसमें 'मैं पना' मानता था। उससे श्रीगुरु कहते हैं कि यह उलटा अभ्यास छोड़ दे और अपनी शुद्धता को सँभाल ले। मैं तो शुद्ध चैतन्यघन ज्ञायक हूँ इसप्रकार निजनिधि को सँभाल ले और मिथ्याविकल्पों के जगजाल से छूट जा।

जो अशुद्धता से छूटकर शुद्धता को सँभालता है उसको धर्मी अथवा सम्यग्दृष्टि कहा जाता है।

जीवों को इस मार्ग पर आना बहुत कठिन है। मनरूपी हिरन को वापिस मोड़ना रे लाल...। खारी जमीन में पानी का आभास होगा; परन्तु पानी नहीं मिलेगा –प्यास नहीं मिटेगी। उसीप्रकार पुण्य–पाप में आत्मा का आभास होता है; परन्तु उनमें आत्मा की शान्ति नहीं मिलती। इसलिए वहाँ से मन को वापिस मोड़ना।

पण्डित बनारसीदासजी ने बहुत सरस पद्य बनाये हैं। जगत को जाल की उपमा दी है। विकल्प के जाल से छूटकर निजघर में आ जा प्रभु! तुझे करने योग्य यह एक ही कार्य है। यही तेरी सत् क्रिया है।

सम्प्रदायवालों को तो ऐसा लगता है कि ऐसा धर्म कहाँ से निकाला? परन्तु कहीं से निकाला नहीं है। जो था, वही बाहर आया है। क्या हो? हिरण मार्ग भूल गया है, उसे सच्चा मार्ग बतानेवाला मिलने पर भी शंका होती है। अपने मानते हैं यही सत्य है –ऐसा सीख लें; फिर यह विपरीत बात समझूँगा। परन्तु भाई! यही वास्तविक बात है।

श्रीगुरु कहते हैं –जगजाल की नास्ति कर और शुद्धता को सँभाल ले बस! इसने ही शुद्धता संभाली कही जाती है–यह अनेकान्त है। अशुद्धता से भी धर्म होता है और शुद्धता से भी धर्म होता है–यह अनेकान्त नहीं हैं; यह तो फूदड़ीवाद है।

पुण्य होवे तो यह सत्य बात सुनने को मिल जाती है; परन्तु इसकी 'हाँ' करने में अनन्त पुरुषार्थ अपेक्षित है।

इस रंगभूमि का पूर्वरंग अथवा उत्थानिका समाप्त हुई। अब प्रथम अधिकार का सार कहते हैं।

क्रमशः

ज्ञानतत्त्व में पर का अकर्तृत्व

[समयसार - सर्वविशुद्ध अधिकार के प्रवचनों से]

धर्म कैसे होता है ? और धर्मात्मा के श्रद्धा-ज्ञान कैसे होते हैं ? वह यहाँ समझाते है।

मेरा ज्ञानस्वभावी आत्मा चैतन्यसूर्य है, उसमें परद्रव्य का संबंध अंशमात्र नहीं है। अरे, राग का एक कण भी मेरे स्वभाव का है—ऐसा ज्ञानी स्वप्न में भी नहीं मानते। किसी भी प्रकार ज्ञानी परद्रव्य को अपना नहीं मानते और निजस्वभाव में व्यवहार के-राग के कणमात्र को भी स्वीकार नहीं करते। पर के संबंध से रहित और राग से भी पार ऐसे सर्व प्रकार से विशुद्ध एक ज्ञानस्वभाव का ही धर्मी जीव अपने रूप से अनुभव करते हैं। उस स्वानुभव में व्यवहार का किंचित्मात्र अवलंबन नहीं है।

जिसप्रकार जगत के व्यवहार में 'यह मेरा ग्राम, यह मेरा देश'—ऐसा कहा जाता है; वहाँ वास्तव में कोई अपने को किसी ग्राम का या देश का स्वामी माने तो लोक में वह मूर्ख है। उसीप्रकार जीव, परद्रव्य को या परभाव को अपने स्वभाव का माने, वह परमार्थ में मूर्ख है। ज्ञानी निजस्वभाव में परभाव को किंचित् आदरणीय नहीं मानते। व्यवहार का-पराश्रय का किंचित् भी आदर करने जाये तो ज्ञानस्वभाव का अनादर होता है।

अरे भाई, तू शुद्धज्ञानतत्त्व; तेरी और आस्रव की एकता कैसी ? मैं तो ज्ञानतत्त्व हूँ, आस्रवतत्त्व ज्ञान से पृथक् है, वह मैं नहीं हूँ—इसप्रकार ज्ञानी दोनों का भेद जानता है। ऐसा भेद जानकर ज्ञानस्वभाव का आश्रय एवं उपासना करना, वह धर्म है।

चिदानंदस्वभाव की श्रद्धा या अनुभव करने में मुझे परद्रव्य कुछ भी सहायक हैं या व्यवहार का आश्रय कुछ सहायक है—ऐसा कोई माने तो वह जीव नि:शंकरूप से मिथ्यादृष्टि है। मैं ज्ञानस्वभाव ही हूँ और ज्ञानस्वभाव के अवलंबन से ही उसकी श्रद्धा तथा अनुभव होता है, उसमें अन्य किसी का अवलंबन नहीं है।

जैसे—धूल के ढेर में शुद्ध स्फटिकमणि पड़ा हो; तो कहीं वह स्फटिकमणि धूल के ढ़ेर के साथ एकमेक नहीं हो गया है; उसीप्रकार धूल के ढ़ेर समान यह जो

पुद्गल पिण्ड (शरीर), उसके बीच चैतन्यचिन्तामणि पड़ा है; वह कहीं पुद्गल पिण्ड के साथ एकमेक नहीं हुआ है। संयोग के ढ़ेर में चैतन्य भगवान दब नहीं गया है। एक परमाणु या त्रिलोकीनाथ परमात्मा—इन सर्व परद्रव्यों से मेरा आत्मा पृथक् है... अरे, सूक्ष्म राग की वृत्तियों (गुणभेद के व्यवहार की वृत्तियों) से भी चिदानंदस्वभाव पृथक् का पृथक् है। ऐसे आत्मा को श्रद्धा-ज्ञान में ले वही ज्ञानी है। आठवीं गाथा में कहा है कि दर्शन-ज्ञान-चारित्र के भेदरूप व्यवहार बीच में आता है, परंतु वह अनुसरण करनेयोग्य नहीं है; व्यवहार के अनुसरण से कहीं परमार्थ का अनुभव नहीं होता। इसलिये कहते हैं कि बुधजनों को आत्मज्ञान के सिवा अन्य कार्य में तत्पर नहीं होना चाहिये। व्यवहार बीच में आता है परंतु वह व्यवहार बढ़ाने जैसा नहीं है—उसकी रुचि करने योग्य नहीं है। जिसप्रकार मुनि लौकिक कार्यों का बोझ सिर पर नहीं रखते, उसीप्रकार ज्ञानी-धर्मात्मा व्यवहार के अवलंबन से मुझे लाभ होगा या इस व्यवहार के अवलंबन में मुझे दीर्घ काल तक रुकना पड़ेगा—ऐसी भावना ज्ञानी को नहीं है। अपने एक परमार्थ स्वभाव में ही मैं तत्पर हूँ, उसी के अवलंबन में रुचि, उत्साह और भावना है।

जो सम्यग्दर्शनरहित है वही परभाव की रुचि करता है और वही 'परद्रव्य में मेरा'—ऐसा मानता है। अरे, चैतन्यपिण्ड पवित्र शुद्ध है, उसमें अज्ञानी राग की चिकनाई लगाता है। अरे, मेरे चैतन्य में राग की चिकनाई नहीं है; मेरे चैतन्यतत्त्व पर परभाव का बोझ नहीं है; ऐसी श्रद्धा करके स्वसन्मुख हो तो आत्मा बिल्कुल हल्का हो जाये। जहाँ अकर्तृत्व प्रगट हुआ और आत्मा साक्षीरूप से-ज्ञाताभावरूप से—परिणमित हुआ, वहाँ उसे क्या चिन्ता ? और काहे का बोझ ? सारा बोझ उसके सिर से उतर गया... और छुटकारे की हवा लग गई।

अरे जीव! संतों ने तुझे तेरी ज्ञान निधि बतलाई, अब तू अकेला एकांत में (अर्थात् स्वभाव की गुफा में) जाकर उस ज्ञाननिधि का उपभोग करना। क्योंकि जगत में तो अनेक प्रकार के विविध प्रकृतियों के जीव हैं; किसी को रुचे किसी को न रुचे, वहाँ तू किसी के साथ वाद-विवाद में न पड़ना और स्व-गृह में बैठे-बैठे अंतर में अपनी ज्ञाननिधि को भोगना...स्वभाव सन्मुख होने में तत्पर होना; जगत की ओर देखने में मत रुकना। *साभार : आत्मधर्म (हिन्दी), वर्ष -22, अंक-3*

श्री महावीर जन्मकल्याणक के अवसर पर

एक विहंगावलोकन

प्रथम पूर्व भव – नन्दराज पिता – प्रौष्ठिल
स्थान – जम्बू विदेह – छत्रपुर दीक्षा गुरु – आचार्य प्रोष्ठिल
द्वितीय पूर्व भव – पुष्पोत्तर (16 वें अच्युत स्वर्ग का विमान)

तृतीय वर्तमान भव

1. जन्मान्तर काल – 278 वर्ष
2. जन्मस्थल – कुण्डलपुर
3. वंश – नाथ
4. माता – त्रिशला
5. पिता – सिद्धार्थ
6. जन्म नक्षत्र – उत्तरा फाल्गुनी
7. काया – 7 हाथ
8. वर्ण – स्वर्ण
9. चिह्न – सिंह
10. आयु – 72 वर्ष
11. कुमार काल – 30 वर्ष
12. राज्यकाल – बालयति
13. दीक्षा कारण – जातिस्मरण
14. पालकी – चन्द्रप्रभा
15. दीक्षावन – नाथ
16. दीक्षा वृक्ष – शाल
17. सहदीक्षित – एकाकी
18. दीक्षोपवास – तृतीय भक्त
19. पारणा – गौदुग्ध खीर
20. दातार – राजा बकुल कुण्डलपुर
21. तपस्या काल – 12 वर्ष
22. केवलज्ञान स्थल – ऋजुकूला
23. केवलज्ञान वृक्ष – शाल
24. समवसरण – 1 योजन
25. पूर्व धारी – 300
26. शिक्षक – 9900
27. वादी – 400
28. अवधिज्ञानी – 1300
29. विक्रियाधारी – 900
30. मन:पर्ययज्ञानी – 500
31. केवली – 700
32. सर्वऋषि – 14000
33. गणधर – 11
34. मुख्य गणधर – इन्द्रभूति
35. आर्यिका – 36000
36. मुख्य आर्यिका – चन्दना
37. श्रावक – 1,00,000
38. श्राविका – 3,00,000
39. मुख्य श्रोता – श्रेणिक
40. योग निवृत्ति काल – 1 मास पूर्व
41. निर्वाण स्थल – पावापुरी
42. निर्वाण नक्षत्र – स्वाति प्रात:
43. सहमुक्त – एकाकी
44. गर्भ तिथि – आषाढ़ शुक्ल 6
45. जन्म तिथि – चैत्र शुक्ल 13
46. तप तिथि – मगसिर कृष्ण 10
47. ज्ञान तिथि – वैशाख शुक्ल 10
48. मोक्ष तिथि – कार्तिक कृष्ण अमावस्या

अन्य नाम – वीर, महावीर, अतिवीर, सन्मति, सुवीर, वैशालिक आदि अन्तिम 11वें रुद्र सात्यकी तनय द्वारा किए उपसर्गों के जयकर्ता थे।

अप्रेल माह के मुख्य तिथि-पर्व

1 अप्रेल – चैत्र कृष्ण अमावस्या
भगवान अनन्तनाथ ज्ञान-मोक्ष कल्याणक
अरनाथ भगवान मोक्ष कल्याणक
2 अप्रेल – चैत्र शुक्ल एकम्
भगवान मल्लिनाथ गर्भ कल्याणक
3 अप्रेल – चैत्र शुक्ल तृतीया
भगवान कुन्थुनाथ ज्ञान कल्याणक
6 अप्रेल – चैत्र शुक्ल पंचमी
भगवान अजितनाथ मोक्ष कल्याणक
(दशलक्षण व्रत प्रारम्भ)
7 अप्रेल – चैत्र शुक्ल षष्ठी
भगवान सम्भवनाथ मोक्ष कल्याणक
9 अप्रेल – चैत्र शुक्ल अष्टमी
10 अप्रेल – चैत्र शुक्ल नवमी
भगवान ऋषभदेव तप कल्याणक
12 अप्रेल – चैत्र शुक्ल ग्यारस
भगवान सुमतिनाथ जन्म-ज्ञान कल्याणक
14 अप्रेल – चैत्र शुक्ल तेरस
भगवान महावीर जन्म कल्याणक
15 अप्रेल – चैत्र शुक्ल चतुर्दशी
दशलक्षण व्रत सम्पन्न
16 अप्रेल – चैत्र शुक्ल पूर्णिमा
भगवान पद्मप्रभ ज्ञान कल्याणक
17 अप्रेल – वैशाख कृष्ण एकम्
षोडश कारण व्रत प्रारम्भ
18 अप्रेल – वैशाख कृष्ण द्वितीय
भगवान पार्श्वनाथ गर्भ कल्याणक
23 अप्रेल – वैशाख कृष्ण अष्टमी
24 अप्रेल – वैशाख कृष्ण नवमी
भगवान मुनिसुव्रत ज्ञान कल्याणक
25 अप्रेल – वैशाख कृष्ण दसवीं
भगवान मुनिसुव्रत जन्म-तप कल्याणक
28 अप्रेल – वैशाख कृष्ण तेरस
भगवान धर्मनाथ गर्भ कल्याणक
29 अप्रेल – वैशाख कृष्ण चतुर्दशी
भगवान नमिनाथ मोक्ष कल्याणक

जिसे मुनिराज के प्रति बहुमान नहीं, वह मिथ्यादृष्टि

जैसे पिता को देखते ही पुत्र को हर्ष होता है; उसी प्रकार अपने धर्मपिता को देखते ही धर्मात्मा के मन में हर्ष होता है। जिसको स्वप्न में भी ऐसे दिगम्बर सन्त के दर्शन के प्रति अरुचि का भाव आता है, वह जीव पापी है। अरे! देवता भी जिनके चरणों में नमते हैं, कुन्दकुन्दाचार्यदेव जैसे महान सन्त भी जिनके लिये धन्य-धन्य कहते हैं – ऐसे दिगम्बर सन्त-मुनियों के प्रति जिस जीव को प्रमोद-भक्ति-बहुमान नहीं आता, वह जीव मिथ्यादृष्टि है। *(अष्टपाहुड़ प्रवचन, १८५)*

गतांक से आगे

श्रुत परम्परा एवं श्रुतज्ञान का स्वरूप

2. सूत्र – दृष्टिवाद अंग का सूत्र नाम का अर्थाधिकार अठासी लाख पदों के द्वारा जीव अबन्धक ही है, अलेपक ही है, अकर्ता ही है, अभोक्ता ही है, निर्गुण ही है, अणुप्रमाण ही है, नास्ति स्वरूप ही है, अस्तिस्वरूप ही है, पृथिवी आदिक पाँच भूतों के समुदाय रूप से उत्पन्न होता है, चेतना रहित है, ज्ञान के बिना भी सचेतन है, नित्य ही है, अनित्य ही है —इत्यादिरूप से क्रियावादी, अक्रियावादी, अज्ञानवादी और विनयवादी के तीन सौ त्रेसठ मतों का पूर्व पक्ष रूप से वर्णन करता है। यह त्रेराशिकवाद, नियतिवाद, विज्ञानवाद, शब्दवाद, द्रव्यवाद और पुरुषवाद का भी वर्णन करता है।

इस सूत्र नामक अधिकार के अठासी अधिकारों में से चार अधिकारों का अर्थनिर्देश मिलता है। उनमें पहला **अबन्धक** अधिकार बन्ध न करनेवाले भावों का वर्णन करता है, दूसरा **त्रैराशिकवाद** अधिकार श्रुति, स्मृति और पुराण के अर्थ का निरूपक है, तीसरा **नियतिवाद** अधिकार नियति पक्ष का कथन करता है तथा चौथा **स्वसमय** अधिकार नाना प्रकार के परसमयों, अन्य दर्शनों का निरूपण करता है।

3. प्रथमानुयोग – दृष्टिवाद अंग का प्रथमानुयोग अर्थाधिकार पाँच हजार पदों के द्वारा पुराणों का वर्णन करता है।

जिनेन्द्र देव ने जगत में बारह प्रकार के पुराणों का उपदेश दिया है। वे समस्त पुराण जिनवंश और राजवंशों का वर्णन करते हैं। पहला अरिहन्त अर्थात् तीर्थंकरों का, दूसरा चक्रवर्तियों का, तीसरा विद्याधरों का, चौथा नारायण-प्रतिनारायणों का, पाँचवाँ चारणों का, छठवाँ प्रज्ञाश्रमणों का वंश है तथा सातवाँ कुरुवंश है, आठवाँ हरिवंश है, नौवाँ इक्वाकुवंश है, दसवाँ काश्यपवंश है, ग्यारहवाँ वादियों का वंश और बारहवाँ नाथवंश है।

4. पूर्वगत – पूर्वगत के चौदह भेद हैं —

4-1. उत्पादपूर्व – जीव-पुद्गलादि का जहाँ जब जैसा उत्पाद होता है, यहाँ उसका वर्णन है। जीव, काल, पुद्गल के उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य का वर्णन किया गया है। इसके 10 वस्तुगत, 200 प्राभृत, पद संख्या 1,00,00,000 है।

4-2. अग्रायणीयपूर्व - इसमें क्रियावाद आदि की प्रक्रिया और स्वसमय का विषय विवेचित है। अग्र अर्थात् द्वादशांग में प्रधानभूत वस्तु के अयन अर्थात् ज्ञान को अग्रायण कहते हैं और उसका कथन करना जिसका प्रयोजन हो, उसे अग्रयाणीय पूर्व कहते हैं। अग्रायणीयपूर्व के पाँच उपक्रम हैं। आनुपूर्वी, नाम, प्रमाण, वक्तव्यता तथा अर्थाधिकार। इसके 14 वस्तुगत, 280 प्राभृत तथा पद संख्या 96,00,000 है।

4-3. वीर्यप्रवादपूर्व - इसमें आत्मवीर्य, परवीर्य, उभयवीर्य, क्षेत्रवीर्य, भाववीर्य और तपवीर्य का वर्णन, छद्मस्थ और केवली की शक्ति, सुरेन्द्र, असुरेन्द्र आदि की ऋद्धियाँ, नरेन्द्र, चक्रवर्ती, बलदेव आदि की सामर्थ्य, द्रव्यों के लक्षण आदि का निरूपण है। इसके वस्तु 8 वस्तुगत, 108प्राभृत, पद संख्या 70,00,000 है।

4-4. अस्तिनास्तिप्रवादपूर्व - इसमें पाँचों अस्तिकायों का और नयों का अस्ति-नास्ति आदि अनेक पर्यायों द्वारा विवेचन है। इसके 18 वस्तुगत, 360 प्राभृत, पद संख्या 60,00,000 है।

4-5. ज्ञानप्रवाद पूर्व - इसमें पाँच ज्ञान, तीन अज्ञान का वर्णन है। इसके 12 वस्तुगत, 240 प्राभृत, पद संख्या 99,99,999 है।

4-6. सत्यप्रवाद पूर्व - इसमें वाग्गुप्ति, वचन संस्कार के कारण, वचन प्रयोग, बारह प्रकार की भाषाएँ, दस प्रकार के सत्य, वक्ता के प्रकार आदि का विस्तार से विवेचन है। इसके 12 वस्तुगत, 240 प्राभृत, पद संख्या 1,00,00,006 है।

4-7. आत्मप्रवाद पूर्व - इसमें आत्मद्रव्य का और छह जीव निकायों का अस्ति-नास्ति आदि विविध भंगों से निरूपण है। इसके 16वस्तुगत, 320 प्राभृत, पद संख्या 26,00,00,000 है।

4-8. कर्मप्रवाद पूर्व - इसमें कर्मों की बंध, उदय, उपशम आदि दशाओं का और स्थिति आदि का वर्णन है। इसके 20 वस्तुगत, 400 प्राभृत, पद संख्या 1,80,00,000 है।

क्रमशः

साभार : स्वाध्याय का स्वरूप

विद्वान परिचय शृंखला

आदि कवि पम्प
रत्न (रत्नाकर) महाकवि पोन्न

कन्नड़ी भाषा के सर्व महान आदिकवि पम्प 941 ई. में थे। उनके आश्रय दाता अरिकेसरी द्वितीय थे। चालुक्यों की उस समय राजधानी गंगधारा थी। उसके पुत्र एवं बद्विग द्वितीय के समय में देवसंघ के आचार्य सोमदेव ने गंगधारा में निवास करते हुए 959 ई. में अपने सुप्रसिद्ध यशस्तिलक चम्पू की रचना की थी। नीतिवाक्यामृत नामक राजनीति शास्त्र की रचना वह उसके कुछ वर्ष पूर्व ही कर चुके थे। यह राजा इन आचार्य की बड़ी विनय करता था और उनकी प्रेरणा से लेंबू पाटक में शुभधान नामक जिनालय बनवाया था। उसके पुत्र एवं उत्तराधिकारी अरिकेसरी तृतीय ने 963 ई. में सोम देवाचार्य को उसी जिनालय के लिए ग्रामदान दिया था।

ऐतिहासिक सन्दर्भ

— 967 ई. में राष्ट्रकूट सम्राट कृष्ण तृतीय नर्मदा के दक्षिणवर्ती समस्त भूभाग का एकछत्र स्वामी था, किन्तु दिसम्बर 969 ई. में उसका सम्पूर्ण राज्य उसके भतीजे कर्क के हाथों से अकस्मात छिन गया। उसके स्थान में वातापि के प्राचीन पश्चिमी चालुक्य वंश के वीर तैलप इसके स्वामी हो गये।

— सम्भवत: महत्वपूर्ण सेवाओं के कारण, कृष्ण तृतीय का कृपा पात्र बनकर मात्र 8वर्ष में उसने यह करिश्मा कर दिखाया।

— तैलप और मालव राज मुंज के युद्धों के कई कथानक हैं। 997 ई. में तैलप द्वितीय की मृत्यु हुई। मान्यखेट को त्यागकर कल्याणी को उसने अपनी राजधानी बनाया था।

— इन कठिन परिस्थितियों में, साहित्यकारों ने आगम ज्ञान को सुरक्षित रखा। उस काल में भी उभय भाषा चक्रवर्ती महाकवि पौन्न के शान्तिनाथ पुराण की एक हजार प्रतियाँ अत्तिमब्बे ने अपने खर्च से बनवाकर वितरित की थी।

षट्खण्डागम ग्रन्थ की चतुर्थ पुस्तक की वाचना सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन में प्रथम बार कीर्तिमान रचते हुए प्रथम श्रुतस्कन्ध '**षट्खण्डागम धवला टीका सहित**' वाचना का कार्यक्रम, मार्गशीर्ष पंचमी, शनिवार 5 दिसम्बर 2020 से अनवरत प्रारम्भ है। जिसकी प्रथम पुस्तक की वाचना का समापन 31 मार्च 2021 को; द्वितीय पुस्तक की वाचना का प्रारम्भ 01 अप्रेल से, समापन 08 जुलाई 2021 को; तृतीय पुस्तक की वाचना का प्रारम्भ 09 जुलाई 2021 तथा समापन 24 अक्टूबर 2021 को और चतुर्थ पुस्तक की वाचना का प्रारम्भ 25 अक्टूबर 2021 से 27 फरवरी 2022 को भक्तिभावपूर्वक सम्पन्न हुई।

विद्वान बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर तथा सहयोगी बहिनों एवं मंगलायतन परिवार का भी लाभ प्राप्त हुआ।

सम्पूर्ण 16 पुस्तकों की वाचना निरन्तर तीर्थधाम मंगलायतन से प्रवाहित होती रहे, ऐसी भावना आदरणीय पवनजी जैन की थी। जिसमें क्रमशः...

पंचम पुस्तक की वाचना 28 फरवरी 2022 से प्रारम्भ

विद्वत् समागम - बालब्रह्मचारिणी कल्पनाबेन, जयपुर एवं सहयोगी बहिनों तथा मंगलायतन परिवार का भी लाभ प्राप्त होगा।

दोपहर 01.30 से 03.15 तक (प्रतिदिन)	**षट्खण्डागम (धवलाजी)**	
रात्रि 07.30 से 08.30 बजे तक	मूलाचार ग्रन्थ का स्वाध्याय	
08.30 से 09.15 बजे तक	**समयसार ग्रन्थाधिराज के कलशों का व्याकरण के नियमानुसार शुद्ध उच्च्चारण सहित सामान्यार्थ**	

नोट—इस कार्यक्रम में आप ZOOM ID-9121984198,
Password - mang4321 के माध्यम से भी शामिल हो सकते हैं।

मुनि का रूप : जैनदर्शन की मुद्रा

जिसको ज्ञानानन्दस्वभावी आत्मा की दृष्टि हुई है और तदुपरान्त असङ्गस्वभाव में लीन होकर मुनिदशा प्रगटी है और बाहर में भी असङ्गदशा हो गई है - ऐसे मुनि का रूप जैनदर्शन की मुद्रा है। ऐसी अन्तर-बाह्य मुद्राधारक सन्त को देखकर जिसको प्रमोद नहीं आता और मत्सरभाव से उनकी निन्दा करता है, वह जीव मिथ्यादृष्टि है। उसको धर्म की प्रीति नहीं है।

(अष्टपाहुड़ प्रवचन, पृष्ठ १८२)

प्रेरक-प्रसंग

यात्रा समाप्त होगी मोक्ष में जाकर

गुरु गोपालादास जी बरैया बम्बई से मुरैना जा रहे थे। उनके प्रशंसक उन्हें पहुँचाने के लिए स्टेशन पर आये। पंडित जी ने अपने एक साथी से कहा– ''सामान ज्यादा है, इसे तुलवा लो। जितना ज्यादा हो, उसका किराया देकर बुक करा लो।''

जाने वाली गाड़ी का गार्ड पास में खड़ा था। वह उनसे प्रभावित था। उसने बात सुनकर कहा– ''सामान तुलवाने की जरूरत नही, मैं तो साथ ही चल रहा हूँ।''

पंडित जी ने चकित होकर उसकी ओर देखा और मुस्कराते हुए उससे पूछा– ''आप कहाँ तक जाओगे भाई?''

''मैं भुसावल तक चल रहा हूँ साहब। आप अधिक सामान की चिन्ता न करें, मैं साथ ही हूँ।''

पंडित जी ने पूछा–''आप भुसावल तक चल रहे हो, यह तो ठीक; पर आगे क्या होगा?''

गार्ड ने सहज भाव से उत्तर दिया– ''कुछ नहीं होगा। मैं दूसरे गार्ड से कह दूँगा। वह आगे कह देगा वह मुरैना तक आपके साथ जावेगा।''

पंडित जी ने फिर पूछा– ''फिर आगे क्या होगा?'' गार्ड ने उत्तर दिया– ''आगे का सावल ही कहाँ उठता है? आप मुरैना ही तो जा रहे हैं, वह वहाँ तक साथ रहेगा।''

पंडित जी ने गम्भीर होकर कहा– ''ऐसा नहीं है। भाई! मेरी यात्रा तो बहुत आगे समाप्त होगी, इसीलिए चिन्ता है।''

''क्या आप मुरैना से भी आगे जा रहे हैं? मैं तो यही जानता था कि आप मुरैना ही जा रहे हैं।''

''बात तो ठीक हैं मैं अभी मुरैना जा रहा हूँ, मगर मेरी यात्रा तो समाप्त होगी मोक्ष में जाकर। क्या तुम्हारा कोई साथी गार्ड वहाँ तक पहुँचा सकेगा? यह सुनकर गार्ड ने क्षमा–याचना कर ली। कविवर 'प्रसाद' के शब्दों में–

इस पथ का उद्देश्य नहीं है श्रान्त भवन में टिक रहना।
किन्तु पहुँचना उस सीमा तक जिसके आगे राह नहीं।।

शिक्षा– हमारे परिणामों का फल भविष्य में हमें ही प्राप्त होने वाला है; अतः विवेकी पुरुष भविष्य पर दृष्टि रखकर ही योग्य कार्य करते हैं।

साभार : बोध कथायें

"जिस प्रकार–उसी प्रकार" में छिपा रहस्य

जिस प्रकार– पड़ोसी को अपना मानना नहीं, पड़ोसी से बिगाडना भी नहीं।

उसी प्रकार– शरीर रूपी पड़ोसी को अपना मानना नहीं, शरीर को प्रमोद से, द्वेष से, अभक्ष्य से, बीमारी से बिगाड़ना नहीं।

जिस प्रकार– घास, कितनी ही आंधी आ जाये टूटती नहीं, झुक जाती है।

उसी प्रकार– जीवन पर कितनी ही विपरीतता आये, नम्र बने रहो विपरीतता टल जायेगी।

जिस प्रकार– अपनी जमीन की सीमा से बाहर मकान बनाना अतिक्रमण कहलाता है। उसी का मकान तोड़ा जाता है। दंड भुगतना पड़ता है।

उसी प्रकार– उपयोग का आत्मप्रदेशों से बाहर जाना अतिक्रमण है। सीमा में वापस लाना प्रतिक्रमण है। अतिक्रमण में कर्मों की मार सहनी पड़ती है।

जिस प्रकार– व्यवहार में भेद लगाते है, व्यापार में गृह कार्यों आदि में भेद ज्ञान लगता है ।

उसी प्रकार– अध्यात्म में भेद विज्ञान लगाना सीखो।

जिस प्रकर– जानकार साँप को मुँह से पकड़ता है। बाहर छोड़ आता है, जहर नहीं चढ़ता है।

उसी प्रकार– सम्यग्दृष्टि राग को पकड़ता है छोड़ने के लिए, रखने के लिए नहीं, राग जहर उसे नहीं चढ़ता है।

जिस प्रकार– माँ–बाप बच्चे को जन्म देते है, लोरिया, गाना गाकर सुलाते हैं। संसार रूपी समुद्र में डुबाते है।

उसी प्रकार– इसके विरूद्ध गुरूदेव जन्म–मरण को नष्ट कराते है, जगाने को ही कहते। संसार समुद्र से बाहर निकालते है।

जिस प्रकार– रोगी को मिश्री कड़वी लगती है, वह तो मीठी ही है, निरोगी को वह मीठी ही लगती है।

उसी प्रकार– अज्ञानी को धर्म बुरा लगता है, वह तो अच्छा ही है। ज्ञानी को धर्म से प्रेम होता है।

क्रमशः संकलन – प्रो० पुरुषोत्तमकुमार जैन, रुड़की

समाचार-दर्शन

अहो भाव ग्रन्थ विमोचन

तीर्थधाम मङ्गलायतन : आध्यात्मिक सत्पुरुष पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी के मुखारविन्द से निरन्तर 45 वर्षों तक उनकी अमृतमयी वाणी के द्वारा प्रत्येक प्रवचनों में अनेकों बार आचार्य, उपाध्याय, साधु परमेष्ठी मुनि भगवन्तों के प्रति भक्तिभावों के उद्गार प्रवाहित होते थे और स्वामीजी गद्गद् होते थे। ये उद्गार उनके हृदय में स्थित मुनि भगवन्तों के प्रति प्रबल भक्तिभावना के प्रत्यक्ष परिचायक हैं।

इन्हीं भावनाओं को संजोकर संकलित कर पुस्तकाकार रूप में प्रकाशित कर जन-जन तक पहुँचाने की भावना दो वर्ष पूर्व श्री पवन जैन, मङ्गलायतन ने भायी थी। तदनुरूप श्री पवनजी की भावनाओं को साकार कर '**अहो भाव**' कृति (णमो लोए सव्व साहूणं) को मूर्तरूप प्रदान किया गया। जिसका भव्य विमोचन ऑनलाइन-ऑफलाइन समारोह दिल्ली-जयपुर-मंगलायतन में, भगवान श्री ऋषभदेव जन्म एवं तप कल्याणक चैत्र कृष्ण नवमीं, दिनांक 26-3-2022 को किया गया।

इस अवसर पर सभा अध्यक्ष के रूप में डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल एवं विशिष्ट अतिथियों में श्री परमात्मप्रकाश भारिल्ल, जयपुर; दिल्ली से श्री अजितप्रसाद जैन, प्रो. वीरसागर जैन, डॉ. संजीव गोधा, मङ्गलायतन से डॉ. योगेश जैन, पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित सचिन जैन, पण्डित सुधीर जैन, पण्डित सोनू शास्त्री, डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, पण्डित समकित शास्त्री, श्री अनिल जैन परिवार बुलन्दशहर, श्री स्वप्निल जैन परिवार मङ्गलायतन, समस्त मंगलार्थी छात्र एवं अभिभावकगण उपस्थित थे। सभी का धन्यवाद ज्ञापन श्रीमान अजितप्रसाद जैन द्वारा किया गया। सभा का संचालन मङ्गलार्थी समकित शास्त्री द्वारा किया गया। अहो भाव का परिचय पण्डित संजय शास्त्री जेबर द्वारा किया गया। मंगलाचरण श्री आर्जव जैन द्वारा किया गया।

भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन का
20वाँ साक्षात्कार शिविर सम्पन्न

तीर्थधाम मङ्गलायतन : यहाँ संचालित भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन का नवीन प्रवेशार्थियों के प्रवेश हेतु बीसवाँ साक्षात्कार शिविर दिनांक 26 मार्च 2022 से 31 मार्च 2022 तक सम्पन्न हुआ। जिसमें इटारसी से पधारे श्री अभयकुमार जैन;

ग्वालियर से श्री शीतलचन्द्र जैन, एडवोकेट; श्री बीना जैन, देहरादून; श्री अनिल जैन परिवार बुलन्दशहर, श्री पारस जैन, पूना आदि महानुभावों की उपस्थिति में अनेक कार्यक्रम सम्पन्न हुए।

अहमदाबाद से पधारे पण्डित सोनूजी शास्त्री (इसरो) ने श्री मोक्षमार्गप्रकाशक ग्रन्थ के आधार पर अरहन्तादि से प्रयोजन सिद्धि इस विषय पर, पण्डित सचिन जैन द्वारा अनेकान्त स्याद्वाद विषय पर, मंगलार्थी अनुभव, शान्तनु, ऋषभ इन्दौर, भूपेन्द्र ग्वालियर, समकित, अर्चित, सिद्धार्थ करेली आदि मङ्गलार्थी छात्रों द्वारा कक्षा, सांस्कृतिक कार्यक्रम का संचालन आदि किया गया।

वर्तमान मङ्गलार्थी छात्रों द्वारा 'सम्यक्त्व की भूमिका' नामक सारगर्भित नाटक का मंचन भी किया गया।

कार्यक्रम के प्रथम दिन शिविर की आवश्यकता और उपयोगिता पर पण्डित अशोक लुहाड़िया, विद्यानिकेतन की विशेषताएँ–साक्षात्कार शिविर की प्रक्रिया सम्बन्धी डॉ सचिन्द्र शास्त्री द्वारा एवं डीपीएस हाथरस के सम्बन्ध में ऋषभ जैन द्वारा उद्बोधन दिया गया। इस प्रकार औपचारिक उद्घाटन कार्यक्रम सम्पन्न हुआ।

प्रवेशार्थी शिविर में 22 सुयोग्य मङ्गलार्थी छात्रों का चयन निष्पक्ष चयन प्रक्रिया द्वारा किया गया। इस अवसर पर भगवान श्री आदिनाथ विद्यानिकेतन में संचालित धार्मिक परीक्षा का वार्षिक परीक्षा परिणाम डॉ. सचिन्द्र शास्त्री द्वारा सुनाया गया। अन्तिम दिन 31 मार्च को श्री स्वप्निल जैन द्वारा मङ्गलार्थी छात्रों एवं अभिभावकों को महत्त्वपूर्ण जानकारियाँ प्रदान की गयीं।

अष्टाह्निका महापर्व के समापन के अवसर पर रत्नत्रय विधान का आयोजन

तीर्थधाम मङ्गलायतन : श्री महावीर जिनालय में फाल्गुन माह की अष्टाह्निका के अवसर पर दिनांक 18मार्च 2022 को रत्नत्रय विधान का आयोजन किया गया। इस अवसर पर श्री अनिल जैन परिवार, बुलन्दशहर, जबलपुर मुमुक्षु मण्डल परिवार, डॉ. सतीश जैन परिवार अलीगढ़ और मङ्गलायतन परिवार एवं मङ्गलार्थी छात्र उपस्थित थे।

विधान के पश्चात् जयमाला पर डॉ. सचिन्द्र शास्त्री का स्वाध्याय, दोपहर में ब्रह्मचारी कल्पनाबेन की षट्खण्डागम (धवला) वाँचना, सायंकालीन जिनेन्द्र भक्ति,

धार्मिक कक्षाओं का आयोजन, मूलाचार वाँचना एवं समयसार शुद्ध श्लोक पाठ के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

इस अवसर पर पण्डित सुधीर जैन परिवार, मङ्गलार्थी ऋषभ जैन परिवार द्वारा महावीर जिनालय की वेदी पर दो सिंहासन विराजमान किये गये।

श्री शान्ति-कुन्थु-अरनाथ विधान एवं आध्यात्मिक प्रवचन शृंखला सम्पन्न

तीर्थधाम चिदायतन : यहाँ होली के अवसर पर दिनांक 17 - 18 मार्च 2022 को दो दिवसीय मंगल आयोजन किया गया। जिसमें द्रव्यसंग्रह विधान, आमन्त्रणकर्ता श्री विकास जैन परिवार सरधना, विधान संयोजक श्री देवेन्द्र जैन सर्राफ सहारनपुर, मंगल कलश स्थापना श्री अनिल जैन परिवार बुलन्दशहर द्वारा किया गया। इस अवसर पर श्री अशोक जैन खतौली, श्रीमती बीना जैन विमलजी दिल्ली, श्री विकास उस्मानपुरा, श्री संदीप जैन मेरठ, श्री देवेन्द्र जैन सहारनपुर एवं अनेकानेक श्रद्धालु जन उपस्थित थे। इस अवसर पर डॉ. वीरसागर जैन दिल्ली, पण्डित मनीष जैन मेरठ, विधानाचार्य पण्डित अशोक लुहाड़िया, पण्डित ऋषभ शास्त्री उस्मापुर, पण्डित दिव्यांश शास्त्री, अलवर, समकित शास्त्री ईशागढ़ आदि उपस्थित थे।

अगला विधान 15 मई 2022 को आयोजन किया जायेगा।

●●

वैराग्य समाचार

गढ़ाकोटा : श्री प्रकाशचन्द चौधरी का देहपरिवर्तन शान्तपरिणामोंपूर्वक हो गया है। आप गुरुदेवश्री के अनन्य भक्त थे। आप वर्षों सोनगढ़ रहकर आत्मसाधना किया करते थे।

छिन्दवाडा : श्रीमती कुसुमलता पाटनी देहपरिवर्तन शान्तपरिणामोंपूर्वक हो गया है। छिन्दवाडा में आध्यात्मिक क्रान्ति की आप सूत्रधार थीं। समस्त मुमुक्षु समाज के लिये यह अपूरणीय क्षति है।

दिवंगत आत्माएँ शीघ्र ही मोक्षमार्ग प्रशस्त कर अभ्युदय को प्राप्त हो—ऐसी भावना मङ्गलायतन परिवार व्यक्त करता है।

तीर्थधाम मंगलायतन से प्रकाशित एवं उपलब्ध साहित्य सूची

मूल ग्रन्थ–

1. समयसार वचनिका
2. प्रवचनसार (हिन्दी, अंग्रेजी)
3. नियमसार
4. इष्टोपदेश
5. समाधितंत्र
6. छहढाला (हिन्दी, अंग्रेजी सचित्र)
7. मोक्षमार्ग प्रकाशक
8. समयसार कलश
9. अध्यात्म पंच संग्रह
10. परम अध्यात्म तरंगिणी
11. तत्त्वज्ञान तरंगिणी
12. हरिवंशपुराण वचनिका
13. सम्यग्ज्ञानचन्द्रिका

पूज्य गुरुदेवश्री के प्रवचन

1. प्रवचनरत्न चिन्तामणि
2. मोक्षमार्गप्रकाशक प्रवचन
3. प्रवचन नवनीत
4. वृहद्द्रव्य संग्रह प्रवचन
5. आत्मसिद्धि पर प्रवचन
6. प्रवचनसुधा
7. समयसार नाटक पर प्रवचन
8. अष्टपाहुड़ प्रवचन
9. विषापहार प्रवचन
10. भक्तामर रहस्य
11. आतम के हित पंथ लाग!
12. स्वतंत्रता की घोषणा
13. पंचकल्याणक प्रवचन
14. मंगल महोत्सव प्रवचन
15. कार्तिकेयानुप्रेक्षा प्रवचन
16. छहढ़ाला प्रवचन
17. पंचकल्याणक क्या, क्यों, कैसे?
18. देखो जी आदीश्वरस्वामी
19. भेदविज्ञानसार
20. दीपावली प्रवचन
21. समयसार सिद्धि
22. आध्यात्मिक सोपान
23. अमृत प्रवचन
24. स्वानुभूति दर्शन
25. साध्य सिद्धि का अचलित मार्ग

पण्डित कैलाशचन्द्रजी का साहित्य

1. जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला (भाग 1 से 7) (हिन्दी गुजराती)
2. मंगल समर्पण

अन्य

1. फोटो फ्रेम (पूज्य गुरुदेवश्री, बहिनश्री)

2. सी.डी.

3. मंगल भक्ति सुमन
4. मंगल उपासना
5. करणानुयोग प्रवेशिका
6. धन्य मुनिदशा
7. धन्य मुनिराज हमारे हैं!
8. प्रवचनसार अनुशीलन

बाल साहित्य (कॉमिक्स)

1. कामदेव प्रद्युम्न
2. बलिदान

आद. पवनजी की स्मृति में उपरोक्त साहित्य सभी मन्दिरों, ट्रस्ट, संस्थानों, विद्यालयों, पुस्तकालयों और साधर्मी भाई–बहिनों को स्वाध्यायार्थ निःशुल्क दिया जायेगा। सम्पर्क –

सम्पर्कसूत्र – पण्डित सुधीर शास्त्री, 9756633800; डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, 7581060200

Email : info@mangalayatan.com

– डाकखर्च आपका रहेगा।

चिदायतन सहयोग

-	परम शिरोमणी संरक्षक	रुपये 11.00 लाख
-	शिरोमणी संरक्षक	रुपये 05.00 लाख
-	परम संरक्षक	रुपये 02.00 लाख 51.00 हजार
-	संरक्षक	रुपये 01.00 लाख

तीर्थधाम चिदायतन संकुल में 206096.26 वर्ग फीट का निर्माण प्रस्तावित है। देव-शास्त्र-गुरु की उत्कृष्ट धर्मप्रभावना हेतु निर्मित हो रहे इस संकुल के निर्माण में आप एवं आपका परिवार, रुपये 2100.00 प्रति वर्ग फीट की सहयोग राशि प्रदान कर, तीर्थ निर्माण के सर्वोत्कृष्ट कार्य में सहभागी हो सकते हैं।

दानराशि में आयकर की छूट

भारत सरकार ने, श्री शान्तिनाथ-अकम्पन-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट को दान में दी जानेवाली प्रत्येक राशि पर, आयकर अधिनियम वर्ष 1961, 12-ए के अन्तर्गत धारा 80 जी द्वारा छूट प्रदान की गयी है।

नोट - आप अपनी राशि सीधे बैंक में जमा करा सकते हैं, अथवा निम्न नाम से Cheq./Draft भेज सकते हैं।

NAME	:	SHRI SHANTINATH AKAMPAN KAHAN DIGAMBER JAIN TRUST, ALIGARH
BANK NAME	:	PUNJAB NATIONAL BANK
BRANCH	:	PARIYAVALI, ALIGARH
A/C. NO.	:	7969002100000194
RTGS/NEFTS IFS CODE	:	PUNB0796900

मङ्गलार्थी प्रवेश पात्रता शिविर की झलकियाँ

Regn. No. : DELBIL / 2001/4685 Postal regn. No. : A.L.G. / 29 / 2021-23

दिगम्बर साधु पात्र रखते ही नहीं....

जिसे मुनिपने की संवरदशा होती है, उसे वस्त्र-पात्र ग्रहण करने की वृत्ति हो ही नहीं सकती और जिसे वस्त्र-पात्र की वृत्ति हो, उसे मुनिपने की संवरदशा नहीं हो सकती। फिर भी जो वस्त्र-पात्रवाले को मुनि मानता है तो उसकी प्रत्येक तत्त्व में भूल है। भाई! सत्य बात तो ऐसी है। क्या यह किसी का कल्पित मार्ग है? नहीं; यह तो वीतराग का मार्ग है, वस्तुस्वरूप ऐसा है।

प्रश्न – क्या दिगम्बर साधु पात्र रखते हैं?

उत्तर – दिगम्बर साधु पात्र रखते ही नहीं, वे पानी का कमण्डलु रखते हैं, तथापि वह पानी पीने के लिए नहीं होता। पीने के लिए वह पानी हो ही नहीं सकता, वह तो शौच के लिए है। *(- प्रवचन-रत्न चिन्तामणि, ३/१२९)*

पं. सं. : DELBIL/2001/4685

स्वामी, प्रकाशक एवं मुद्रक स्वप्निल जैन द्वारा **मङ्गलायतन** मुद्रणालय, आगरा रोड, अलीगढ़-202001 छपवाकर, 'विमलांचल', हरिनगर, अलीगढ़-202001 से प्रकाशित। **सम्पादक** : डॉ. सचिन्द्र शास्त्री, मङ्गलायतन।

मङ्गलायतन

श्री आदिनाथ-कुन्दकुन्द-कहान दिगम्बर जैन ट्रस्ट, हरिनगर, आगरारोड, अलीगढ़-202001 (उ.प्र.)

Shri Adinath-Kundkund-Kahan Digamber Jain Trust

Harinagar, Agra Road, Aligarh-202001 (U.P.)

Ph. : 9997996346, 2410010/10; Fax : 2410019/22

info@mangalayatan.com www.mangalayatan.com